सांस्कृतिक समस्याएँ --

उपन्यासकार नागार्जुन आंचलिक उपन्यास लिखनेवाले एक ऐसे उपन्यासकार रहे हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों में अंचल विशेष की सभी विशेषताओं का विश्लेषण किया है। उनके उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में उन्होंने जिन सांस्कृतिक समस्याओं को उठाया है, उन समस्याओं को समझने के लिए हमें सबसे पहले यह ज्ञान लेना बहुत आवश्यक हो जाता है कि 'संस्कृति' का मतलब क्या है ? उसके अंतर्गत क्या - क्या आता है। तब जाकर हम समझ पायेंगे कि सांस्कृतिक समस्याएँ आलोच्य उपन्यास में कौन-कौन सी आयी हैं।

(१) संस्कृति क्या है ?

संस्कृति अत्यंत व्यापक और विराट है। प्राचिन काल से मनुष्य अपनी सफलता के लिए जो संघर्ष करता आया है, जिसमें वह सफल होता रहा है। उसी का लेखा-जोखा इसमें आता है। इसे परिभाषित करना अत्यंत कठिन होता है क्योंकि उसका न तो कोई रूप होता है न आकार। वह तो एक निरंतर प्रवाहित रहनेवाली प्रक्रिया है। वह सर्वत्र एक जैसी नहीं होती। इसी वजह से मानव समुदाय एक अलग - अलग प्रकार की पहचान ले लेता है। केशव देव शर्मा कहते हैं -- 'संस्कृति अत्यंत व्यापक एवं महत्वपूर्ण विषय है। इसके अंतर्गत मानव के विभिन्न धार्मिक सिद्धातों तथा मान्यताओं सामाजिक नियमों व परंपराओं, अर्थ व्यवस्थाओं, राजनीतिक संघटनों, भोजन-निवास व आचार-विचार सम्बन्धी वैषम्यपूर्ण मान्यताओं का समावेश परिलक्षित होता है।' [१]

संस्कृति की व्यापकता के बारे में डा. कृष्णा अवस्थी जी ने लिखा है -- 'संस्कृति मनुष्य को मानवता की ओर प्रेरित करनेवाले आदर्शों, समाज-विचारों, कार्यों, अनुष्ठानों की समष्टि का नाम है।' [२]

---

१ केशव देव शर्मा - आधुनिक हिंदी उपन्यास और वर्ग संघर्ष - पृ. २३८।

२ डा. उषा भटनागर - वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन पृ. १७।

'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग के साथ संस्कृत की (ड) कृ (ञ) धातु से निर्मित है। इसका शाब्दिक अर्थ है -- परिष्कार करना। सामान्यत: इस शब्द का प्रयोग शिक्षा और प्रशिक्षण के द्वारा विकास या सुधार करने के लिए होता है। परंतु संस्कृति को इस संकीर्ण दायरे में आबद्ध नहीं किया जा सकता। संस्कृति उस समस्त सामाजिक व्यवहार एवं आचरण का नाम है जो व्यक्ति को परंपरा से प्राप्त होता है।'[1]

'आचार-विचार का ही दूसरा नाम संस्कृति है। ये आचार-विचार बुद्धि तथा अनुभवजन्य ज्ञान की भित्ति पर आश्रित है। बुद्धिजन्यज्ञान में आचार आ जाता है, जिसको दूसरे शब्दों में सभ्यता भी कहते हैं। यह आचारवान सभ्यता तो परिवर्तनशील रहती है। आज का सदाचार कल दूराचार में भी परिणत किया जा सकता है। परंतु अनुभवजन्य ज्ञान जो अतिशीघ्र परिवर्तन न होने से स्थायित्व वा नित्य रहनेवाला कहाजाता है,विचार के अंतर्गत होने से संस्कृति का भी विधायक बन जाता है। यही एक मात्र कारण है कि संस्कृति को मानव-बुद्धि की उपज न कहा जाकर खोज कहना युक्ति संगत होगा। खोज जिसका दूसरा नाम सुसंस्कृत विचार होने से संस्कृति कहा गया है , एक आदर की वस्तु हो जाती है।[2]

'संस्कृति' और 'प्रकृति' परस्पर सापेक्ष शब्द है। प्रकृति में अतिशय अथवा श्रेष्ठता का आधार ही संस्कार या संस्कृति है। दूसरे शब्दों में,संस्कृति स्वभाव का सुधार अर्थात अभीष्ट लक्ष्य की ओर परिणाम है। मनुष्य का स्वभाव क्या है, उसका चरम अभीष्ट क्या है और उसकी प्राप्ति के साधन क्या है इन प्रश्नों के उत्तर सांस्कृतिक प्रक्रिया को निश्चित दिशा प्रदान करते है। संस्कृति की परिभाषा उसके जीवन-दर्शन के सहारे ही सम्भव हैं यद्यपि उसकी व्यावहारिकता सफलता अथवा सिद्धि प्रकृति के उपर अधिकार की अपेक्षा रखती है।'[3]

---

१ केशव देव शर्मा - आधुनिक हिन्दी उपन्यास और वर्गसंघर्ष - पृ.८३।

२ डा.मनमोहनलाल शर्मा - भारतीय संस्कृति और साहित्य - पृ. २४।

३ सं.वासुदेवशरण अग्रवाल - साहित्य और संस्कृति - पृ. ।

संस्कृति, समाज का विशिष्ट जीवन-ढंग है। इसे मनुष्य-जाति का सामाजिक जीवन भी कहा जा सकता है। सामान्यत: संस्कृति मनुष्य के सीखे हुए व्यवहारों का समग्र रूप है। संस्कृति का मोह प्रत्येक समाज में पाया जाता है और भारतीय समाज भी इसके लिए अपवाद नहीं है।

(२) संस्कृति शब्द का अर्थ --

'नालन्दा विशाल शब्द सागर' के अनुसार संस्कृति का अर्थ है -- '१ शुद्धि। सफाई। २ सुधार। संस्कार। ३ किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि की वे सब बातें जो उसके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती है। कल्चर।'[१]

'हिंदी शब्दसागर' के दसवें भाग के अनुसार 'संस्कृति' शब्द का अर्थ है -- '१शुद्धि। सफाई २। संस्कार। सुधार। परिष्कार।
३ सजावट। आरादश। ४रहन-सहन आदि की रुढि।
५ पूर्ण करना। पूरा करना (को.)। ६ निर्णय। निश्चयन (को.)
७ उद्योग। चेष्टा (को.)। ८ चौबीस वर्ण वृत्तों की संज्ञा।
९ अंग्रेजी 'कल्चर' शब्द के अनुवाद रूप में प्रयुक्त शब्द।'[२]

(३) भारतीय संस्कृति -

पाश्चात्य विद्वान संस्कृति को सभ्यता का पर्याय मानकर चलते हैं। वे इसे सभ्यता का बौद्धिक पक्ष मानते हैं। आंग्ल भाषा में संस्कृति के लिए 'कल्चर' शब्द प्रचलित है। यही कल्चर सभ्यता के लिए भी प्रयुक्त होता है। लेकिन भारतीय मनीषी भी संस्कृति को मानवीय चिन्तन और उसके व्यवहारों से जोड़ते है। हमारे शब्द कोषों में 'संस्कृति' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ

---

१ सं.श्री नवलजी - नालन्दा विशाल शब्द सागर - पृ.१३८८।

२ सं.श्यामसुंदरदास - हिंदी शब्दसागर (दसवाँ भाग) पृ.४८९६।

बताते हुए लिखा गया है कि यह शब्द 'संस्कार' शब्द से बना है। संस्कार अर्थात् परिष्कार। अत: मानव व्यवहारों और चिन्तनों का परिष्करण ही संस्कृति है।'[१]

भारतीय संस्कृति को समझने के लिए हमें उसके दोनों पहलों बाह्य और अभ्यान्तर पर अलग अलग विचार करना होगा। बाह्य तत्वों के अंतर्गत वेश-भूषा, खान-पान, पर्व-उत्सव, धार्मिक विश्वास, अन्धविश्वास, टोने-टोटको, कलाएँ आदि सभी आ जाते हैं। धार्मिक विश्वास और रीति-रिवाज सम्बन्धी परम्पराएँ हमारी अपनी हैं। हमारी धर्म-सम्बन्धी आस्था, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा दर्शाती है।

भारतीय संस्कृति का मूल आधार कृषि है जो ग्रामीण समाज का प्राण है। भारतीय संस्कृति का वास्तविक रूप हमें ग्रामीण समाज में ही देखने को मिलता है। ग्रामीण जीवन की गहराइयाँ नापे बिना भारतीय संस्कृति को ठीक तरह से समझा नहीं जा सकता। भारतीय किसान इसी ग्रामीण संस्कृति का एक अंग है। ग्राम्य जीवन को अनुशासित करनेवाले पर्व-त्यौहार, मेले, लोक-गीत, लोक-कथाएँ, कीर्तन, प्रथाएँ, रीति-रिवाज आदि ग्रामीण संस्कृति के नियामक तत्व गाँवों में पाये जाते हैं।

'ग्राम जीवन में पर्व-त्यौहारों का विशेष स्थान होता है। विभिन्न समयपर मनाये जानेवाले पर्व त्यौहार ग्रामीण व्यक्तित्व को सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़ते हैं। इन पर्व-त्यौहारों के मूल में चाहे कोई भी कारण हो - परंतु उनका मूल उद्देश्य मनोरंजन ही है।'[२] लोककथाएँ और गाथाएँ भी ग्रामीण जीवन का एक अभिन्न हिस्सा होती हैं।

---

१ डा. उषा भटनागर - वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन - पृ. ११।

२ केशव देव शर्मा - आधुनिक हिंदी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष - पृ. ८४।

वैसे देखा जाए तो संस्कृति मूलत: नैसर्गिक नहीं है फिर भी वह निरंतर विकास की ओर बढती जा रही है। वह कृत्रिम है और समाज के लिए प्रत्यक्ष उपयोगी न होते हुए भी वह उसे समृद्ध तो बनाती ही है। इसलिये कहा जाता है कि संस्कृति अर्जित संस्कार है। वह मनुष्य को समाज के अनुकूल बनाने का प्रयास करती है। व्यक्ति जिस समाज का अंग होता है, उसी के सांस्कृतिक गुण उसमें उतर आते है। चाहे जितने भी नवीन मूल्यों की स्थापना क्यों न हो परंतु पुराने मूल्यों की जडे उखाड़कर फेंक देना आसान नहीं होता।

आँचल विशेष में संस्कृति के मूल्यों का जतन किया जाता है। अधिक काल तक संस्कृति के मूल्य वहाँ सुरक्षित रह सकते है क्योंकि बाहरी संस्कृति का प्रभाव वहाँ कम पड़ता है। वे अपनी रूढि-परंपराओं में जकडे रहते है। हमारे देहातों मे आज भी भारतीय संस्कृति वास्तववादी और जीवंत रूप मे दिखाई देती है। इसके विपरित महानगरों में पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण किया जा रहा है और हमारी संस्कृति न के बराबर रही है। हमें संस्कृति का यह दर्शन आँचलिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि में होता है। आँचलिक उपन्यास मे देहातों का तथा उनकी संस्कृति का मनोहारी चित्र स्पष्ट होता है। संस्कृति के बिना आँचलिक जीवन का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। संस्कृति के माध्यम से समाज में ऐक्य, विश्व - बंधुत्व की मान्यता तथा उनके बीच संगठन किया जा सकता है।

नागार्जुन हिंदी साहित्य मे आँचलिक उपन्यासकार के रूप मे जाने जाते है। उन्होंने बिहार के मिथिला जनपद को अपने उपन्यासों की आधार-भूमि बनाया। मिथिला जनपद में प्रचलित कई रूढि-परंपराओं, रीति-रिवाजों, त्यौहारों, मेलों, अंधश्रद्धाओं का चित्रण उन्होंने किया है जो वहाँ की सांस्कृतिकता के एक अंग है। उनका बचपन का पूरा समय उसी वातावरण में बीत गया। उसी अँचल में वे पले-बढे हुए। उसी वातावरण का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में किया है।

रतिनाथ की चाची में चित्रित सांस्कृतिक समस्याओं को हम निम्नलिखित विभागों में विभाजित कर सकते हैं --

(१) पूजा-अर्चना ।

(२) रूढि-परंपराएँ ।

(३) प्रचलित प्रथाएँ ।

(४) किंवदन्तियाँ ।

(५) उत्सव, पर्व, त्यौहार ।

(६) तीर्थाटन ।

(१) <u>पूजा-अर्चना</u> --

मनुष्य समाज का जब से निर्माण हो गया है तभी से उसका ईश्वर में विश्वास रहा है। ईश्वर के प्रति उसके मन में श्रद्धायुक्त भय रहा है इसलिये हमेशा उसे प्रसन्न करने के लिए मनुष्य आडम्बरों का आयोजन करता आया है। पूजा-अर्चना भी उसी प्रकार का एक आडम्बर है। 'रतिनाथ की चाची' में कई ऐसे पात्र हैं जो पूजा-पाठ किया करते हैं। जैसे -- 'आश्विन के महीने में बड़ी धूम-धाम से बाबा दशभुजा दुर्गा की पूजा किया करते। शुभंकरपुर से उत्तर, नजदीक ही छोटासा एक गाँव पड़ता है, परसौनी। वहाँ के वंशी मण्डल प्रतिमाएँ बनाने में बहुत ही कुशल थे। यह गुण उनमें अपने पूर्वजों की परम्परा से आया था। आजकल तो लोगों में इन बातों की ओर से काफी उदासीनता दिखाई देती है, परन्तु सौ-पचास साल पहले का जमाना कुछ दूसरा ही था। उन दिनों गाँव-गाँव में प्रतिमाएँ बना करतीं। आश्विन में दुर्गा की। कार्तिक में काली, चित्रगुप्त और कार्तिकेय की। माघ में सरस्वती की, चैत में राम, लक्ष्मण, सीता तथा उनके स्वजन-परिजन, अनुचर-परिचर की - कुल मिलाकर तेरह मूर्तियाँ। भादों में कृष्ण आदि की। इनके अलावा मिट्टी, रंग और कूची के इन उस्तादों

की जरूरत और भी कामों में हुआ करती थीं।`[1]

किसी न कोई गलत काम किया हो तो उसे प्रायश्चित्त किये बगैर समाज में स्थान नहीं दिया जाता था। गौरी की माँ भी गौरी के छुटकारा लेनेपर सत्यनारायण की पूजा करवाती है -- 'गौरी की माँ समाज के लिए बाधिन थी। इतना बड़ा 'कुकांड` हो जाने पर भी तरकुलवा में किसी ने गौरी की माँ को खुल्लम-खुल्ला कुछ कहा नहीं। गर्भ गिराने के ठीक ग्यारहवें दिन उसने सत्यनारायण की पूजा की। गाँव-भर को आमन्त्रित किया। पाँच ही छ: लोग थे,जो नहीं आए। उनमें से तीन तो ऐसे थे जिनकी इस घर से पुश्तैनी अनबन थी। बाकी दो - तीन ऐसे थे जिनका ख्याल था कि सिमरिया घाट जाकर प्रायश्चित्त कर लेने के उपरान्त ही सत्यनारायण की पूजा करवानी चाहिए थी।`[2]

जब गाँव के सभी लोग रतिनाथ की चाची को अपमानित किया करते हैं तो उसका मन पूजा में नहीं लगता। बिना इच्छा के वह भगवान की पूजा करता है -- 'आज शालिग्राम की पूजा में रतिनाथ का मन नहीं लगा। सराइयाँ तीन थीं,देवता दो ही थे - शालिग्राम और नर्मदेश्वर। ताँबे की सराई शालिग्राम के लिए,पीतलवाली नर्मदेश्वर के लिए। तीसरी भी पीतल की ही थी। वह पँच देवता के उद्देश्य से थी। चन्दन रगड़कर उसने अच्छत भिगोये। ' सहस्त्रशीर्षा.. आदि मन्त्र पढ़कर शंख से शालिग्राम पर जल दारा,फिर नर्मदेश्वर पर। फिर अनमने भाव से चन्दन,अच्छत,फूल बगैरह चढ़ाकर रत्ती ने पूजा खतम की।`[3]

दुर्गापूजा में एक मारवाड़ी ने चंडी का संपूर्ण पाठ करवाया था। यह पाठ करनेवाले नौ लोग थे। मारवाड़ी उन्हें पच्चीस-पच्चीस की दक्षिणा और एक-एक जोड़ा धोती देता है और साथ ही दसों दिन फलाहार का इंतजाम करता है। शाम को गंगा के किनारे पंडे ठंडई छानते हैं।

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.४० ।
२ वही - पृ.५४ ।
३ वही - पृ.१४ ।

BARR... ...KAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR
SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY ★ KOLHAPUR

बेतिया की महारानी के पास पूजा-पाठ ,अनुष्ठान,जप और ध्यान का कुछ-न-कुछ सिलसिला हमेशा लगा रहता है। रानी के पास रूद्रधर मिश्र पुजारी का काम किया करते हैं। महारानी विजयादशमी के दिन भगवती का दर्शन करने के लिए विन्ध्याचल चली जाती है।

पंडित कालीचरन पाठक रोज चंडी का पाठ किया करते है। शुभंकरपुर के राजाबहादुर दुर्गानंदन सिंह पंडितजी को मानते है। पंडितजी के दादा ने हवेली में जो रोज चंडी पाठ करने का संकल्प लिया था उसे पंडितजी अभी तक चलाये आ रहे है। इसके लिए उन्हें सालाना बारह रूपये मिलते है। पाठशाला में जो प्रतिमापूजन होता था। उसका वर्णन नागार्जुन ने इस प्रकार किया है —

'सरस्वती की एक सुन्दर प्रतिमा थी। प्रतिवर्ष वसन्तपंचमी के दिन सरस्वती की नई प्रतिमा की स्थापना होती थी, और साल-भर वह प्रतिमा ज्यों की त्यों वहाँ रहती थी।' [१]

भोला पंडित धार्मिक आडम्बर करने में माहिर व्यक्ति है। उन्हें दुर्गासप्तशती के तेरहों अध्याय मुखोद्गत है। काम और जगदम्बा की स्तुति दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं। बीच में कोई मिलनेवाला आ जाए तो अस्फष्ट भाषा में,संकेतों के द्वारा उससे बात भी किया करते है क्योंकि बीच में बातचीत करने की मनाही है।

इस प्रकार आज यह सांस्कृतिक रिवाज जो पूजा-अर्चना का रहा है, उसके पीछे होनेवाली श्रद्धा की भावना कम होकर आज सिर्फ स्वार्थ की भावना उसके पीछे काम करने लगी है। मनुष्य भगवान की पूजा कर उससे अपना स्वार्थ साधना चाहता है।

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.७६।

(२) रूढ़ि-परंपराएँ -

आम तौर पर देखा जाए तो ग्रामीण समाज में व्यक्ति रूढ़ि-परम्पराओं में जकड़ा रहता है। भौगोलिक दृष्टि से व्यक्ति बाहर की आनेवाली नयी सभ्यता की हवा से कोसों दूर रहता है और रूढ़ियों में जकड़ा रहता है। नागार्जुन ने ऐसी ही कुछ रूढ़ि-परम्पराओं का चित्रण आलोच्य उपन्यास में किया है।

किसी व्यक्ति ने अपनी भूल पर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा और उसके साथ ही प्रायश्चित्त पूरा होनेपर उसने सत्यनारायण की पूजा भी करनी पड़ेगी ऐसी रूढ़ि गाँव में प्रचलित थी। इसके साथ ही किसी मंत्र को लिफाफे में भेज दिया जाय तो उसका प्रभाव घट जाता है ऐसी भी मान्यता थी इसलिये तो जयनाथ तारा-बाबा द्वारा दिया मंत्र रतिनाथ के हाथों भेज देता है।

अपने ग्रामीण परिवेश को गाँव के लोग छोड़ना नहीं चाहते। वे उसके लिए कारण यह बताते हैं कि पर्व और त्योहार के दिनों में जब देवता और पितर आ जायेंगे। और सूना घर-आँगन देखेंगे तो निराश वापस लौट जायेंगे। अर्थात् ऐसी मान्यता है कि त्योहारों के दिन देवता - पितर घर में आ जाते हैं।

(३) प्रचलित प्रथाएँ --

हमारे गाँवों में आज भी कई ऐसी प्रथाएँ प्रचलित हैं जिन्हें लोग तोड़ना नहीं चाहते। अगर किसी ने भूल से भी इसे तोड़ने की कोशिश की तो उसे सामाजिक कोप का भाजन बनना पड़ता है। इसलिये कोई भी इन प्रचलित प्रथाओं को तोड़ने का दुस्साहस नहीं करता। नागार्जुन ने शुभंकरपुर गाँव में प्रचलित कई ऐसी प्रथाओं का जिक्र किया है।

अगर किसी का कोई नजदिकी रिश्तेदार अपने गाँव को छोड़कर अन्य किसी गाँव में उसके ब्याह के लिये चला गया हो तो जब वह वापस आ जाए तो उसने लाल धोती का पहना होना बहुत जरूरी है क्योंकि इससे ही लोग समझ

जाते है कि शादी निर्विघ्न संपन्न हो गयी । जब रतिनाथ और जयकिशोर उमानाथ के ब्याह के बाद गाँव वापस लौटते है तो उन्हें लाल धोती पहना देखकर चाची समझ जाती है कि उमानाथ का ब्याह निर्विघ्न संपन्न हो गया है ।

एक बार एक विधवा ब्राह्मणी पर व्यभिचार का आरोप लगाया गया था । उसे प्रचलित प्रथा के अनुसार अपने पावित्र्य को हाथ पर पीपल का पत्ता रखकर, उसपर आग रखकर, शपथ लेकर सिद्ध करना पड़ा था । अगर वह इन्कार कर देती तो उसे सामाजिक कोप का भाजन होना पड़ सकता था ।

परदा पद्धति तो प्राचीन काल से हमारे समाज में प्रचलित है । परंतु शुभंकरपुर गाँव की या मिथिलांचल की परदा प्रथा की यह अलग विशेषता है कि वहाँ दामाद से भी परदा किया जाता है । जब जयनाथ गौरी को लेकर तरकुलवा में उसके मायके पहुँचाने जाता है तब --'स्त्रियाँ अपने दामाद से हल्का-सा परदा करती है और जयनाथ ठहरे यहाँ दामाद के छोटे भाईसाहब ।' १

गर्मियों के दिनों में मिथिला में सौराठ का मेला लगता है जिसमें हजारों विवाहार्थी इकठ्ठे होते है । मध्यस्त के रूप में घटकराज होते है जो विवाह संबंध जोडने के लिए लड़के-लड़कियों के अभिभावकों से पैसा ऐंठते है फिर भी यह सौराठ विवाह प्रथा अत्यंत मशहूर हो गयी है ।

मिथिला की एक और अति प्रचलित प्रथा है --'बिकौआ' प्रथा । मिथिला के कुलीन ब्राह्मणों में यह प्रथा अधिकतर दिखाई देती है । इंद्रमणि झा की दोनों लडकियों का ब्याह इसी प्रथा के अनुसार हुआ है । इस प्रथा में लडकियाँ विवाह के बाद अपने माँ-बाप के पास रहती है और 'बिकौआ' पति महाशय साल-डेढ साल में एक बार अपनी पत्नी के पास आ जाते है और डेढ-दो मास रहकर फिर चले जाते हैं ।

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.१८ ।

मिथिलांचल में ' ज्योनार ' प्रथा का उल्लेख मिलता है। मैथिल ब्राह्मणों में वार्षिक श्राद्ध के अवसरपर ' ज्योन्यार ' देने की प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा के अनुसार जात - बिरादरी के लोगों को ज्योनार दिया जाता है।

मैथिल की छोटी जातिवालों में ' बिलोकी ' की प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा के अनुसार विवाह के बाद दुल्हा-दुल्हन पालकी में बैठकर बड़े-बड़े लोगों के यहाँ आशीर्वाद लेने के लिए जाते है जिससे उन्हें कुछ रूपये भी मिलते हैं। ससुराल से गौना कर लौटते समय जमाई के साथ अनेक चीज-वस्तु और खाद्यपदार्थ दिये जाते है। वह खाद्यपदार्थ आस-पास के घरों में ' बयने ' के तौर पर बाँटे जाते हैं। उमानाथ के ससुरालवालोंने भी उमानाथ को लौटते समय केला, दही, चूड़ा, मिठाइयाँ, पकवान आदि चीजें दी थीं। वह सभी चीजें चाची बाँट देती है।

इस प्रकार शुभंकरपुर गाँव में प्रचलित कई प्रथाओं का वर्णन नागार्जुन ने किया है। इनमें से कई प्रथाएं उनकी अंधश्रद्धा को दर्शानेवाली भी है।

(४) <u>उत्सव-पर्व-त्यौहार</u> --

भारतीय ग्रामीण जीवन में उत्सव, पर्व, त्यौहारों का बड़ा ही महत्व होता है। परंपरा, भौगोलिक विविधता आदि के कारण अलग अलग स्थानों में अलग अलग प्रकार के उत्सव, त्यौहार एवं पर्व मनाये जाते हैं। वर्तमान काल में लोगों की धर्म के प्रति श्रद्धा बहुत कम हो गयी है। इसलिये आज इन धार्मिक उत्सवों के प्रति उदासिनता दिखाई देती है। इन उत्सवों, पर्वों का निर्माण सांस्कृतिक लेन-देन और आपसी मेल-जोल के हेतु होता था। परंतु देहातों में उनका प्रचलन धार्मिक कारणों से अधिकतर होता है। इसलिये यहाँ मनाये जानेवाले उत्सवों, पर्वों, त्यौहारों में सभी सम्मिलित होते हैं। इन त्यौहारों - पर्वों के साथ कई अंधश्रद्धाएँ भी जुड़ी हुई दिखाई देती हैं। अंधविश्वास एवं धार्मिक भय के कारण लोग इनका परंपरागत रूप में पालन किया करते हैं।

नागार्जुन ने ' रतिनाथ की चाची ' में मिथिलांचल में प्रचलित उत्सवों ,

पर्वों एवं त्यौहारों का चित्रण किया है। जैसे - मिथिला में 'मधुश्रावणी' नामक एक त्यौहार मनाया जाता है। श्रावण - शुक्ला तृतीया में नव-विवाहित वर-वधु एकत्र आते हैं। इस दिन वर घृतमिश्रित बाती की हल्की लौ से वधु के पैरों को छू देता है और वह 'हँस' कर उठती है। सखी शीतोप चार करती है और जलती बाती को चुटकी से मसलकर बुझाने का प्रयास करती है।

रक्षाबंधन त्यौहार भी गाँवों में उत्साह के साथ मनाया जाता है। उमानाथ,जयकिशोर हर साल अपनी बहनों के पास जाया करते थे। 'रक्षाबन्धन के दिन राजा बहादुर की कलाई में पंडितजी राखी बाँधते है।' [१]

होली का उत्सव भी शुभंकरपुर में पुआ-पकवान के साथ मनाया जाता था। दुर्भाग्य की मारी 'रतिनाथ की चाची' की जब बहु आ गयी तो उसके हाथ से सारे अधिकार छिन गये और उस साल के जैसी मनहूस होली चाची ने कभी नहीं बिताई।

अश्विन के महिने में दुर्गा पूजा बडी ही धूम-धाम से की जाती थी। दुर्गा की कई तरह की मूर्तियाँ बना दी जाती थीं। इस काम में गाँव के सभी लोग ताराबाबा का साथ देते थे। पाठशाला के पंडितजी सरस्वती की सुंदर प्रतिमा का पूजन करते थे। हर साल वहाँ नयी प्रतिमा स्थापित होती और सालभर वह उसी तरह रहती।

वैशाख में आनेवाला एक त्यौहार है सतुआ संक्रांति। रतिनाथ के लिए यह संक्रांति बहुत ही फीकी रही क्योंकि इस साल चाची उसके पास नहीं थी। वह मायके चली गयी थी।

मातृद्वितीया का त्यौहार भी अत्यंत उत्साह एवं उमंग से मनाया जाता था। आज उसके पीछे वह भावना नहीं रही परंतु फिर भी गाँव में आज भी बडे ही पावित्र्य से इस त्यौहार को मनाया जाता है। उमानाथ और जयकिशोर

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.४४।

BARR. BAL ... LIBRARY
SHIVAJI ... KOLHAPUR
UNIVERSITY ... KOLHAPUR

हर साल मातृद्वितीया के अवसर पर अपनी बहनों के पास जाते थे। लेकिन जब रतिनाथ की चाची को लोकनिंदा का बली होना पड़ा तब से उमानाथ प्रतिमामा के घर नहीं गया।

गाँव में कृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव भी बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता था। लेकिन उसमें वाद-विवाद भी चलता रहता था। तरूण दल कीर्तन मंडली को गाँव में बुलाने का पक्षधर तो बूढ़े लोग नटुआ(नर्तक) को मँगवाना चाहते। इसी प्रकार जन्माष्टमी का त्यौहार बीत जाता।

विजयादशमी के दिन बेतिया में मेला लगता है। वहाँ -' गाय, बैल और घोड़े खूब बिकते हैं। जमींदार बाबू प्रतिवर्ष मेला में जाते थे।'[१] सोराठ का मेला तो पूरे इलाके में नहीं देश में मशहूर है।

इस प्रकार मिथिलांचल में होनेवाले उत्सव, पर्व, त्यौहार, मेले आदि का यथार्थ वर्णन नागार्जुन ने किया है।

(५) किंवदन्तियाँ --

जब किसी व्यक्ति, वस्तु आदि के बारे में कोई ऐसी जानकारी उपलब्ध हो जो सिर्फ लोगों के द्वारा लोगों को सुनाई गयी हो और सालों तक मान्य रही हो तो उसे किंवदन्ति कहते हैं। शुभंकरपुर गाँव के तारा बाबा के बारे में कई किंवदन्तियाँ प्रचलितथी। जैसे --' एक दफे रात को बाबा की कुटिया में चोर घुसा। थोड़ी बहुत काम की जो भी चीज मिली, उसे लेकर बाहर निकलने लगा तो निकल ही न सका। उनके पैरों में मानो किसी ने आँत बाँध दिया। बाबा बाहर चारपाई पर सोए पड़े थे। सुबह सुबह उठे तो चोर को ज्यों का त्यों बैठा पाया। पूछने पर वह रो पड़ा। बाबा ने उसे सान्त्वना दी और खिला-पिलाकर

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.१११।

विदा किया । मरी गाय को बाबा ने जिला दिया,इस बात को कहते - कहते लोग थकते नहीं । छट्टू कुम्हार की एक पूँछ कटी काली गाय थी,मगर दूध बहुत देती थी । एक दिन चरकर आने के बाद वह चित-पट हो गई, जंगल की कोई जहरीली घास खाकर मर गई । छठूआ दौड़ा-दौड़ा गया और धम्म से बाबा के पैरों पर गिर पड़ा । बाबा एक जड़ी उखाड़ लाए और गाय के मुँह में डाल दी । थोड़ी देर पीठ पर हाथ फेरते रहे कि वह उठ खड़ी हुई ।`[१]

इसी तरह की किंवदन्तियाँ कभी-कभी पीढ़ी-पर-पीढ़ी चलती हैं ।

(६) तीर्थाटन --

अपने मन की शांति के लिये या भगवान की खोज में कई इन्सान तीर्थाटन करने जाते हैं । जिस प्रकार कहा जाता है कि सभी संस्कृतियाँ नदियों के किनारे पनपी हैं । उसी प्रकार अधिकतर तीर्थस्थल नदियों के किनारे ही पाये जाते हैं । इसके पीछे कई तरह की धार्मिक मान्यताएँ भी रही हैं ।

नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'रतिनाथ की चाची ` के कई पात्रों का तीर्थयात्रा पर जाने का वर्णन किया है । जैसे --' बेतिया की महारानी के यहाँ पूजा-पाठ ,अनुष्ठान,जप और ध्यान का कुछ-न-कुछ सिलसिला लगा ही रहता । रूद्रधर मिश्र पुजारी के तौर पर रानी के यहाँ रहते थे । इस बार विजयादशमी के दिन महारानी भगवती का दर्शन करने विन्ध्याचल गई तो मिश्र जी भी साथ थे । वहीं जयनाथ का मिश्र से परिचय हुआ और वही परिचय जयनाथ को प्रयाग खींच लाया । एक मास महामृत्युन्जय का जप करके चालीस रुपया दक्षिणा पाई । भोजन का प्रबन्ध तो,खैर,अलग से था ही । प्रयाग से जयनाथ काशी आ गए ।`[२]

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.४० ।

२ वही - - पृ.७३ ।

इसी प्रकार सत्तर साल के उम्रवाले तारा बाबा भी तीर्थयात्रा करने जाते थे। 'साल-डेढ-साल बाद वह विन्ध्याचल या पशुपतिनाथ की यात्रा में निकला करते और डेढ-दो महीने बाद वापस आ जाते। फिर वही गाँव, फिर वही कुटी।' [१]

जयनाथ तो प्रयाग, काशी और अन्य तीर्थस्थलों की बार-बार परिक्रमा किया करते थे। गाँव में भीषण बिमारी फैली थी और वे बाबा वैद्यनाथ पर जल ढारने के लिए चले गये थे। इसके पहले भी जब गौरी की पेट में आठ माह का बच्चा पल रहा था और समाज की कटुक्तियों का निशाना उसे बनना पड़ा था तब भी जयनाथ इसी तरह बाबा वैद्यनाथ पर जल ढारने चले गये थे और जल्दी वापस नहीं लौटे थे।

इस प्रकार कई सांस्कृतिक समस्याओं का, उनके परिणामों का यथार्थ चित्रण करने में नागार्जुन जी सफल दिखाई देते है।

निष्कर्ष --

निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते हैं कि नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में मिथिलांचल का, वहाँ के ग्रामीण जीवन का, रूढि-परंपराओं का, रीति-रिवाजों का, अंधश्रद्धाओं का आचार-विचार का यथार्थ चित्रण कर मानो मिथिलांचल की संस्कृति को ही हमारे सामने प्रस्तुत किया है। जिन सांस्कृतिक समस्याओं का नागार्जुन ने चित्रण किया है वे समस्यायें ही उन लोगों के आर्थिक, बौद्धिक पिछडेपन का कारण बन जाती है।

* * * * *

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.३८।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

उपसंहार

'उपन्यासकार नागार्जुन' आधुनिक हिंदी साहित्य के सबसे प्रखर चेतनशील, सृजनकर्मी रहे है। उनकी सर्जनात्मक प्रतिमा का पल्लवन उपन्यास व काव्यमें देखा जा सकता है। आधुनिक हिंदी उपन्यास को आँचलिक पुट के साथ प्रस्तुत कर उन्होंने समाज के निम्न वर्गों के अनवरत शोषण तथा उससे जन्मे आक्रोश का विस्तृत अंकन अपनी कृतियों में किया है। यद्यपि उनकी कथाभूमि का मुख्य स्रोत बिहार का मिथिलांचल रहा है तथापि उसमें आए पात्र व वर्णित घटनाएँ संपूर्ण देश के अभावों को झेलते, व्यवस्था से टकराते और सामाजिक बदलाव की तीव्र आकांक्षा लिए हुए है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों ने इस सर्वतोमुखी जागरण काल में गाँव और समस्याओं से जूझ रहे किसानों को देखा, उनकी जिन्दगी में अभावों के ढेर, यातनाओं के संकट को अनुभूत किया और संवेदनाओं के स्तर पर उन्हें अभिव्यक्ति दी। नागार्जुन के उपन्यासों ने इस क्षेत्र में पहल की।

किसी भी लेखक की नैतिक मान्यताएँ, भावनाएँ, आकांक्षाएँ दृष्टिकोण और आदतें आदि युग की मनोवृत्ति (समाज की मनोवृत्ति) और विचारधारा जो उसकी रचनाओं में अभिव्यक्त होती है वे निश्चित रूप से प्रवाहित ही नहीं होती बल्कि निर्धारित भी होती हैं। नागार्जुन भी अपने युग की मनोवृत्ति और विचारधारा से अछूते नहीं रहे है।

नागार्जुन का जन्म एक सनातनधर्मी, अशिक्षित, संस्कार हीन, दरिद्र और रूढिवादी निम्नमध्यवर्गीय मैथिली ब्राह्मण परिवार में हुआ। नागार्जुन के पिता पुरोहित थे और चाहते थे कि उनका बेटा भी यहीं काम करें। उनका बचपन निम्नवर्ग के हम उम्र लड़को के साथ बीता था। यही वजह है कि उनके मन में शोषित-पीड़ित लोगों के प्रति सहानुभूति जागी। बचपन से ही वे विद्रोही स्वभाव के थे। देश-विदेश के सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों से परिचय पा लेने के बाद उनके पतिताइपन में परिवर्तन आने लगा। उनपर आर्य समाज का प्रभाव भी पड़ने लगा। सन १९३६ में लंका प्रवास के बाद उनके वास्तविक जीवन संघर्ष

की शुरुवात होती है। बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। उनके व्यक्तित्व को निखारने में व्यक्तिगत जीवन के कटु संघर्षों का अनुभव प्रगतिशील आन्दोलन और वैज्ञानिक जीवन-दर्शन, मार्क्सवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है। वामपंथी राजनीति में लाने के लिए राहुलजी और स्वामी सहजानन्द सरस्वती की भूमिका के सक्रीय योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता।

नागार्जुन का जैसा व्यक्तित्व रहा है वैसा ही कृतित्व है। इन दोनों में कोई मौलिक भेद नहीं रहा। इस एकता का आधार - है - जातीय और राष्ट्रीय भावना लेकिन उनके साहित्य को देखने पर पता चलता है कि वैचारिक स्तर पर अनेक विसंगतियाँ हैं। उनका जीवन संघर्षशील है। उसमें जीवन की सादगी, खुलापन, अपनापन, सरलता और सुस्पष्टता है तो जीवनसंघर्ष से अपनी कठोरता और दृढता भी है। अभावग्रस्त जीवन है तो उससे लड़ने की प्रबल शक्ति भी है।

प्राचीन काल से भारतीय समाज में विधवा जीवन की समस्या कोई नयी समस्या नहीं है। सामन्ती समाज व्यवस्था की प्रमुख विशेषता यह थी कि मातृसत्ताक समाज का पितृसत्ताक समाज में संक्रमण अर्थात् वर्गविभाजन हो गया। नारी का वैधव्य समाज जीवन का अभिशाप बनकर रह गया। इसलिये यही कहना उचित होगा कि भारतीय समाज में नारी वर्ग ही सर्वाधिक पीडित रहा। अछूत वर्ग से भी अधिक।

स्वयं नागार्जुन बिहार के निम्नवर्गीय मैथिल ब्राह्मण समाज में जन्म लेकर प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में विधवाओं के तिरस्कृत और यातनापूर्ण जीवन के सहभागी रहे हैं। नागार्जुन ने अपने विषय में बताया है कि मैं उन व्यक्तियों में से नहीं था जिनका जन्म सम्भ्रान्त, सुशिक्षित, संपन्न परिवारों में हुआ था। उनकी मूल शिक्षा घरेलू ढंग की परंपरावादी ब्राह्मण खानदान की सामान्य स्थिति की थी। इसलिए उनके प्रथम उपन्यास की 'रतिनाथ की चाची' की विषय वस्तु एक उपेक्षित अपमानित और यातनापूर्ण वैधव्य जीवन जीती गौरी से सम्बन्धित है।

इस उपन्यास को जब हमने पढ़ा तो हमें उसमें कई तरह की समस्याएँ नजर आयी जिन्हें पाँच अध्यायोंओं में विभाजित कर मैंने विश्लेषित किया है।

समाज कई तरह की समस्याओं से घिरा हुआ है। तो समाज जीवन का चित्रण होनेवाले उपन्यास में यह समस्याएँ न आए, यह मुमकिन नहीं। नागार्जुन भी इस बात के लिये अपवाद नहीं रहे। उन्होंने 'रतिनाथ की चाची' में समाज जीवन की विधवा समस्या, विवाह समस्या, स्त्री-विक्रय समस्या, नारी द्वारा नारी की उपेक्षा, यौन समस्या, शिक्षा समस्या, अंधश्रद्धा कुरीतियाँ, धार्मिक शोषण, पुरुष निष्ठुरता, महाजनी शोषण, वर्ग संघर्ष, अछूत समस्या, भूकंप, मलेरिया जैसी प्राकृतिक समस्याएँ, पारिवारिक समस्याएँ, अमानवीय कृत्य आदि समस्याओं को उन्होंने उठाया है। उसमें से कुछ समस्याओं का समाधान तो प्रस्तुत किया गया है परंतु कुछ समस्याएँ उन्होंने जैसी है वैसी चित्रित की हैं। जिन सामाजिक समस्याओं को उन्होंने अपने बचपन में देखा था, समझा था उसी का यथार्थ चित्रण उन्होंने किया है।

राष्ट्र के विकास में अर्थ का योगदान महत्वपूर्ण होता है। मनुष्य के भौतिक जीवन को संतुलित करने का काम अर्थ करता है। इसलिये उसके जीवन में होनेवाली आर्थिक समस्याएँ भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है। ग्रामीण जीवन में ये समस्या निर्माण होने की कई वजहें होती है। जैसे -- जमींदारों, महाजनों द्वारा शोषण, निरक्षरता, बेकारी, गरीबी, अंधश्रद्धा, बेगार प्रथा, प्राकृतिक आपत्तियाँ आदि। इन सभी का यथार्थ चित्रण कर नागार्जुन ने शुभंकरपुर गाँव की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर क्यों हो गयी है, इसे बताया है।

धर्म मनुष्य के मानसिक शक्ति का आधार है। परंतु आज-कल धर्म का स्वरूप विकृत हो गया है, जिसके लिए कई कारण होते हैं। इन कारणों की वजह से ही धर्म का स्थान इतना गिर गया है। धर्म के विकृत रूप को नागार्जुन ने आलोच्य उपन्यास में दिखाया है। उन्होंने धर्म के विविध समस्याओं को दर्शाया है। धर्म का विकृत रूप देखकर ग्रामीण समाज में धर्म का स्वरूप कितना बिगड़ गया है इस बात का पता चलता है। इन धार्मिक समस्याओं के लिए कारण बने धर्म

पाखंडियों की वजह से आज ग्रामीण समाज आर्थिक रूप से भी बहुत पिछड गया है। नागार्जुन इनके यथार्थ चित्रण में अत्यंत सफल दिखाई देते हैं क्योंकि उन्होंने स्वयं इसे महसूस किया था।

समाज में अंधश्रद्धाओं का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है। धर्म की आड़ लेकर समाज में अंधश्रद्धाएँ फैलानेवाले भी कम नहीं हैं। ग्रामीण समाज में अंधश्रद्धा का रूप कैसा है यह दिखाने के लिए नागार्जुन ने स्वयं जो अनुभूत किया है उसी का चित्रण आलोच्य उपन्यास में किया है। इसमें प्रचलित रूढियाँ, शगुन-अपशगुन, पूजा-पाठ, मनौतियाँ, भूत-प्रेत में विश्वास, परंपराएँ, आदि कई रूप आते हैं। नागार्जुन ने इन सभी का चित्रण अपने उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में किया है। उनके ग्रामीण जीवन के समग्र अध्ययन का पता उनके उपन्यास में चित्रित सामाजिक अंधश्रद्धाओं से चलता है।

संस्कृति क्या है, उसकी परिभाषा, उसका शाब्दिक अर्थ, भारतीय संस्कृति क्या है यह सब जान लेने के पश्चात हम जब नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' का विश्लेषण करते हैं तब हम पाते हैं कि, इस उपन्यास में नागार्जुन ने पूजा अर्चना, रूढि-परंपराएँ, प्रचलित प्रथाएँ, किंवदन्तियाँ, उत्सव, पर्व, त्योहार, तीर्थाटन आदि रूपों का चित्रण कर हमारे सामने मिथिलांचल की संस्कृति को खोलकर रख दिया है। संस्कृति के इन विविध कारणों की वजह से सांस्कृतिक समस्याएँ किस तरह निर्माण होती है इसका चित्रण इसमें हम पाते हैं। ग्रामीण संस्कृति के इस चित्रण की वजह से हम मिथिलांचल की संस्कृति को, रीति रिवाजों को, रूढि-परंपराओं को जान जाते हैं।

इस प्रकार पूरी तरह से समस्याओं के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि नागार्जुन 'रतिनाथ की चाची' में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक अंधश्रद्धा आदि समस्याओं के यथार्थ चित्रण में सफल रहे हैं।

इन सभी समस्याओं का समाधान तो उन्होंने प्रस्तुत नहीं किया है फिर भी इसके विविध रूपों का चित्रण किया है और समाज को इन समस्याओं के प्रति जागृत किया है। इस प्रकार हम कह सकते है कि समस्याओं के सभी रूपों को चित्रित करने में नागार्जुन पूरी तरह से सफल दिखाई देते हैं।

*   *   *